संस्कृत साहित्य के विकास का ऐतिहासिक सन्दर्भ

डॉ. देवेन्द्र कुमार शर्मा

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज जिस प्रकार का होगा वह उसी भाँति साहित्य में प्रतिबिम्बित रहता है। समाज के रूप-रंग, बुद्धि-हास, उत्थान-पतन, समृद्धि दुरवस्था के निश्चित ज्ञान का प्रधान साधन तत्कालीन साहित्य होता है। इसी प्रकार साहित्य संस्कृति का प्रधान वाहन होता है। संस्कृति की आत्मा साहित्य के भीतर से अपनी मधुर झाँकी सदा दिखलाया करती है। संस्कृति के उचित प्रसार तथा प्रचार का सर्वश्रेष्ठ साधन साहित्य ही है। संस्कृति का मूल स्तर यदि भौतिकवाद के ऊपर आश्रित रहता है तो वहाँ का साहित्य कदापि आध्यात्मिक नहीं हो सकता और यदि संस्कृति के भीतर आध्यात्मिकता की भव्य भावनाएँ हिलोरें मारती रहती है, तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी आध्यात्मिकता से अनुप्राणित हुए बिना नही रह सकता। साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण यदि समाज का मुकुर है, तो सांस्कृतिक आचार तथा विचार के विपुल प्रचारक तथा प्रसारक होने के हेतु, संस्कृति के सन्देश को जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण, संस्कृति का वाहन होता है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास पूर्वोक्त सिद्वान्त का पूर्ण समर्थक है एवं भारतीय समाज के भव्य विचारों का रूचिर दर्पण है। भारतवर्ष में सांसारिक जीवन के उपकरणों का सौलभ्य होने के कारण भारतीय समाज जीवन संग्राम के विकट संघर्ष से अपने को पृथक रखकर आनन्द की अनुभूति को. वास्तव शाश्वत आनन्द की उपलब्धि को, अपना लक्ष्य मानता है। इसलिए संस्कृत - काव्य जीवन की विषम परिस्थितियों के भीतर से आनन्द की खोज में सदा संलग्न रहा है। आनन्द सच्चिदानन्द भगवान् का विशुद्ध पूर्ण रूप है। इसीलिए संस्कृत-काव्य की आत्मा रस है। रस का उन्मीलन श्रोता तथा पाठक के हृदय में आनन्द का उन्मेष-ही काव्य का अन्तिम लक्ष्य है। संस्कत आलोचनाशास्त्र में औचित्य, रीति, गुण तथा अलंकार आदि काव्यांगों का विवेचन होने पर भी रसविवेचन ही मुख्यतया प्रतिपाद्य विषय है। भारतीय समाज का मेरुदण्ड है गृहस्थाश्रम, अन्य आश्रमों की स्थिति गृहस्थाश्रम के ऊपर निर्भर है। फलतः भारतवर्ष का प्रवृत्तिमूलक समाज गृहस्थ धर्म को पूर्ण महत्व प्रदान करता है और इसीलिए संस्कृत साहित्य में गार्हस्थ्य धर्म का चित्रण सांगोपांग, पूर्ण तथा हृदयावर्जक रूप से उपलब्ध होता है। संस्कृत साहित्य का आद्य महाकाव्य वाल्मीकीय रामायण गार्हस्थ्य धर्म की धुरी पर घूमता है। दशरथ का आदर्श पितृत्व, कौशल्या का आदर्श मातृत्व, सीता का आदर्श सतीत्व, भरत का आदर्श भ्रातृत्य, सुग्रीव का आदर्श बन्धुत्व और सबसे अधिक रामचन्द्र का आदर्श पुत्रत्व भारतीय गार्हस्थ्य धर्म के ही विभिन्न अंगों के आराधनीय आदर्शो की मधुमय मनोरम अभिव्यक्तियाँ हैं।

'साहित्य' शब्द और अर्थ के मञ्जुल का सूचक है। इसकी व्युत्पत्ति है 'सहितयोः भावः साहित्यम्' अर्थात सहित शब्द तथा अर्थ का भाव। इस मौलिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हमारे काव्य-ग्रन्थों तथा अलङ्कार-ग्रन्थों में अनेक स्थानों पर दीख पड़ता है। साहित्य-संगीत-कलाविहिनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः[1] महाकवि भर्तृहरि ने संगीत तथा साहित्य से विहीन पुरूष को जब पशु कहा न च काव्ये शास्त्रदिवत् अर्थ-प्रतीत्यर्थ शब्दमात्रं प्रयुज्यतेः सहितयोः शब्दार्थयोः तत्र प्रयोगात्। तुल्यकक्षत्वेन अन्यूनानतिरिक्तत्वम्[2] तब उनका अभिप्राय 'साहित्य' के उन कोमल काव्यों से है जिसमें शब्द और अर्थ का अनुरूप सन्निवेश है। शास्त्र और साहित्य का अन्तर यही है कि शास्त्र में अर्थप्रतीति के लिए ही शब्द का प्रयोग किया जाता है, परन्तु काव्य में शब्द और अर्थ दोनों एक ही कोटि के होते है, न तो कोई घटकर रहता है, न बढ़कर। इसी अर्थ को दृष्टि में रखकर राजशेखर ने साहित्य-विद्या को 'पञ्चमी विद्या कहा है, जो मुख्य चार विद्याओं- पुराण, न्याय (दर्शन), मीमांसा, धर्मशास्त्र का सारभूत है। पंचमी साहित्यविधेति यायावरीयः। सा हि चतसृणा विद्यानामपि निष्यन्दः।[3] बिल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरित में काव्यरूपी अमृत को साहित्य समुद्र के मन्थन से उत्पन्न होने वाला बतलाया है।[4] इस प्रकार 'साहित्य' शब्द का प्रयोग संकुचित अर्थ में काव्य, नाटक आदि के लिये होता है। परन्तु उधर 'साहित्य' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में भी होने लगा है। 'साहित्य' से अभिप्राय उन ग्रन्थों से है, जो किसी भाषा-विशेष में निबद्ध किये गये हों। इस अर्थ में वाङ्मय शब्द का प्रयोग उचित प्रतीत होता है। अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त 'लिटरेचर' शब्द के लिए ही साहित्य का प्रयोग इधर होने लगा है। इस ग्रन्थ में साहित्य का प्रयोग संकुचित अर्थ में ही किया गया है और अधिक लोकप्रिय होने के कारण काव्य के नाना रूपों का वर्णन कुछ विस्तार के साथ किया गया है।

लोगों में एक धारणा सी फैली हुई है कि भारतवर्ष के साहित्य में ऐतिहासिक ग्रन्थों का अस्तित्व नहीं है। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि भारतीय लोग इतिहास से परिचित ही नहीं थे, परंतु ये धारणाएँ नितांत निराधार है। भारतीय साहित्य में पुराणों के साथ इतिहास वेद के समकक्ष माना जाता है। ऋक्-संहिता में ही इतिहास से युक्त मंत्र है। 'त्रितं कूपऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ। तत्र ब्रह्मेतिहासमिश्रमृडमिश्रं गाथमिश्रं भवति'[5] छान्दोग्य उपनिषद् में सनत्कुमार से ब्रह्मविद्या सीखने के समय अपनी अधीत विद्याओं में नारद मुनि ने 'इतिहास-पुराण' को पंचम वेद बतलाया है। 'ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् इतिहास-पुराणं पंचमं वेदानां वेदम्।'[6] यास्क ने निरुक्त में ऋचाओं के विशदीकरण के लिए ब्राह्मण ग्रन्थ तथा प्राचीन आचार्यों की कथाओं को 'इतिहासमाचक्षते' ऐसा कहकर उद्धृत किया है। वेदार्थ के निरूपण करने वाले विभिन्न सम्प्रदायों में ऐतिहासिकों का भी एक अलग सम्प्रदाय था; इसका स्पष्ट परिचय निरुक्त से चलता है- 'इति ऐतिहासिकाः'। इतना ही नहीं, वेद के यथार्थ अर्थ को समझने के लिए इतिहास-पुराण का अध्ययन आवश्यक बतलाया गया है। व्यास का स्पष्ट कथन है कि

वेद का उपबृंहण इतिहास और पुराण के द्वारा होना चाहिए, क्योंकि इतिहास-पुराण से अनभिज्ञ लोगों से वेद सदा भयभीत रहता है। राजशखर ने उपवेदों में इतिहास-वेद को अन्यतम माना है। कौटिल्य की 'इतिहास' कल्पना बड़ी विशाल, उदात्त एवं विस्तृत है। वे सबसे पहले 'इतिहास-वेद' की गणना अथर्ववेद के साथ करते हैं और इसके अंतर्गत पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का अंतर्भाव मानते हैं। अथर्ववेद इतिहासवेदौ च वेदाः। पश्चिमं (अहर्भाग) इतिहासश्रवणे पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः[7] इतने पुष्ट प्रमाणों के रहते हुए भारतीयों को इतिहास की कल्पना से शून्य मानना नितांत अनुचित है। हमारे प्राचीन साहित्य में इतिहास-विषयक ग्रंथ थे, जो अब धीरे-धीरे उपलब्ध हो रहे हैं। परंतु पाश्चात्य इतिहास-कल्पना और हमारी इतिहास-कल्पना में एक अंतर है जिसे समझ लेना आवश्यक है। पाश्चात्य इतिहास घटना-प्रधान है, अर्थात् उसमें युद्ध आदि की घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करना ही मुख्य उद्देश्य रहता है, परंतु भारतीय कल्पना के अनुसार घटना वैचित्र्य विशेष महत्व नहीं रखता। हमारे जीवन-सुधार से उनका जहाँ तक लगाव है वहीं तक हम उन्हें उपादेय समझते आये हैं।

भारतीय साहित्य में 'इतिहास' शब्द से प्रधानतया महाभारत का ही ग्रहण होता है और यह ग्रहण करना उचित है। महाभारत कौरवों और पाण्डवों के युगान्तरकारी युद्ध का ही सच्चा इतिहास नहीं है, प्रत्युत उसे हमारी संस्कृति, समाज, राजनीति तथा धर्म के प्रतिपादक इतिहास होने का भी गौरव प्राप्त है। यहाँ इतिहास के अंतर्गत हम वाल्मीकीय रामायण को भी रखना उचित समझते हैं। प्रचलित परिपाटी के अनुसार इसे 'आदि महाकाव्य' मानना ही न्यायसंगत होगा, परंतु धार्मिक दृष्टि से उसका गौरव महाभारत से घटकर नहीं है। रामायण के द्वारा चित्रित भारतीय सभ्यता महाभारत से भी प्राचीन है। रामायण मर्यादा पुरुषोत्तम महाराज रामचन्द्र के जीवन चरित्र को चित्रित करने वाला अनुपम गन्थ है। रामराज्य की कल्पना जी भारतीय राजनीति में आदर्श मानी जाती है। महर्षि वाल्मीकि की देन है। यह जानना आवश्यक है कि रामायण और महाभारत की घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। ये दोनों महत्वपूर्ण युद्ध इसी भारतवर्ष की सीमा के भीतर लडे गये थे। उन्हें अंतर्जगत के धर्म और अधर्म के द्वंद्व-युद्ध का प्रतीक मात्र मान लेना नितांत अनुचित है। वैदिक साहित्य में हम जिस धर्म का सिद्धांतरूप में दर्शन करते है उसी का व्यावहारिक रूप हमें इन दोनों ग्रंथों में उपलब्ध होता है। सच्ची बात तो यह है कि रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति के प्रकाशस्तभ हैं। जिनके प्रकाश से हम अपने वैदिक धर्म के अनेक अंधकार से आवृत्त तथ्यों का साक्षात् करने में समर्थ होते हैं। ये दोनों इतिहास ग्रंथ है, परंतु उस अर्थ में ये इतिहास ग्रंथ नहीं हैं जिस अर्थ में समझा जाता है। इतिहास शब्द यहाँ अत्यत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इतिहास का शब्दार्थ ही है - इति+ह+आस इस तरह से निश्चय से था। इस प्रकार से हमारे प्राचीन धर्म तथा हमारी सभ्यता में जो कुछ था, उसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन इन दोनों ग्रंथों में उपलब्ध होता है। इतिहास

के द्वारा वेद के अर्थ का उपबृंहण होता है, इसका भी यही रहस्य है। वेद का अर्थ तो स्वयं सूक्ष्म ठहरा, जिसे सूक्ष्म मतिवाले लोग ही भली-भांति समझ सकते हैं, परंतु इन इतिहास तथा पुराण ग्रथों में हम उसी सूक्ष्म अर्थ का प्रतिपादन जनसाधारण के लिए बोधगम्य, सरस तथा सरल भाषा में पाते हैं। इतिहास और पुराणों में जो सिद्धांत प्रतिपादित हैं वे सिद्धांत वेद के ही है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।[8] पस्तु हमारे समझने योग्य भाषा में लिखे जाने के कारण ये हमारे हृदय को अधिक स्पर्श करते हैं। इस तरह वैदिक सिद्धांतों के बहुल प्रचारक होने के कारण ही धार्मिक दृष्टि से इन ग्रंथों का महत्व है। व्यास ने इतिहास की महत्ता बतलाते हुए इसी बात की ओर संकेत किया है :-

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

इतिहास के जिस व्यापक अर्थ का हमने अभी निर्देश किया है उसका समर्थन राजशेखर की काव्यमीमांसा से भी होता है। राजशेखर का कहना है कि इतिहास दो प्रकार का है-(1) परिकिया, (2) पुराकल्प। 'परिकिया' से अभिप्राय उस इतिहास से है जिसका नायक एक ही व्यक्ति होता है, जैसे रामायण। 'पुराकल्प' अनेक नायक वाले इतिहास-ग्रंथ का सूचक है, जैसे महाभारत। राजशेखर के अनुसार भी ये दोनों ग्रंथ-रत्न 'इतिहास' के ही अंतर्गत ठहरते हैं। राजशेखर का कथन 'काव्यमीमांसा' में इस प्रकार है-

परिकिया पुराकल्पः इतिहास-गतिर्विधा।
स्यादेक-नायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका।।

संदर्भ ग्रंथसूची -

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. रामसागर त्रिपाठी
2. संस्कृत साहित्य का नवीन इतिहास - डॉ. विनय कुमार राव
3. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास - डॉ. उमाशंकर शर्मा, 'ऋषि'
5. ऋग्वेद संहिता - डॉ. उमाशंकर शर्मा
6. काव्य मीमांसा - राजशेखर
7. अर्थशास्त्र - श्री वाचस्पति गैरोला
8. पुराण तत्व मीमांसा - डॉ. कृष्णमणि त्रिपाठी
8. वेद के तथ्यों के पौराणिक उपबृहण के लिए द्रष्टव्य बलदेव उपाध्याय का पुराणविमर्श, पृष्ठ 250-264 (चौखम्भा, वाराणसी, 1965)

श्री रामजीलाल स्मृति शिक्षा महाविद्यालय,
पवालिया सागानेर, जयपुर (राज)